जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष - ६० अंक - ४
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १००) रु०
आजीवन - १०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

चैत्र-वैशाख: सम्वत् २०७५ वि०   अप्रैल – २०१८

स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती
(विशेष विवरण पृष्ठ २ पर)

स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती

स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजी सरस्वती का संन्यास लेने से पूर्व का नाम श्री युधिष्ठिर आर्य था । स्वामीजी का जन्म उड़ीसा प्रान्त के बालेश्वर जिला में वैतरणी नदी के किनारे सुदामपुर गाँव में वैशाख शुक्ल ३ सं० १९७५ वि० की (अक्षय तृतीया) दि० २९-४-१९१८ ई० में हुआ था । आपके पिताजी का नाम श्री कालीचरण और माताजी का नाम श्रीमती शोभा देवी था । परिवार में पर्याप्त धार्मिक भावना थी । अभी बालक युधिष्ठिर चार वर्ष के ही थे कि माता शोभा देवी का देहान्त हो गया और बालक का पालन-पोषण पितामही श्रीमती हार देवी ने किया ।

स्वास्थ्य की निर्बलता के कारण बालक युधिष्ठिर का अध्ययन सुचारु रूप से नहीं चल रहा था, किन्तु स्वतन्त्रता की भावना हृदय में काम कर रही थी । जिस समय आप नवमी कक्षा में पढ़ रहे थे, आपने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेना आरम्भ कर दिया था ।

१९४७ ई० में जब देश स्वाधीन हो गया, उस समय हिन्दू-मुस्लिम दंगे से पीड़ित उड़ीसा वासियों की सेवा करने के लिये युधिष्ठिरजी मटियाबुर्ज, कलकत्ता आये । कलकत्ता में आर्य समाज का वार्षिकोत्सव हो रहा था । वार्षिकोत्सव के व्याख्यानों का युधिष्ठिरजी पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और वे प्रसिद्ध मिशनरी उपदेशक पंडित अयोध्या प्रसादजी के सम्पर्क में आये । पण्डित अयोध्या प्रसादजी की प्रेरणा से आपने वैदिक साहित्य का स्वाध्याय किया और कट्टर आर्य समाजी बन गये ।

वैदिक साहित्य के स्वाध्याय से आपके मन में देशसेवा के साथ संन्यास की प्रवृत्ति भी पैदा हो गई। श्री युधिष्ठिरजी ने १९५० ई० में बसन्त पंचमी के दिन आर्य प्रतिदिन सभा, पटना (बाँकीपुर) में प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी अभेदानन्दजी सरस्वती से संन्यास की दीक्षा ली और तबसे आपका नाम स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती पड़ गया ।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी राजामण्डी, आगरा की शुद्धिसभा में सन् १९५४ ई० तक संस्कृत भाषा और वैदिक सिद्धान्त पढ़ते रहे । उड़ीसा के माननीय नेता श्री हरेकृष्ण मेहताब ने स्वामी ब्रह्मानन्दजी को उड़ीसा में धर्मप्रचार और जनसेवा करने की प्रेरणा दी । स्वामीजी आगरा से राउरकेला वेदव्यास में आये और धर्मप्रचार, शुद्धि, जनसेवा आदि का कार्य करने लगे ।

इस समय से स्वामी ब्रह्मानन्दजी आर्यसमाज कलकत्ता के अंगसंग बन गये । आर्यसमाज कलकत्ता ने तभी से स्वामीजी के हर कार्य में खुलकर सहयोग किया है । स्वामीजी ने पानपोस वेदव्यास गुरुकुल की स्थापना की और इस गुरुकुल के लिए कलकत्ता के आर्यसमाजी सदा उदारतापूर्वक सहायता करते रहते हैं ।

स्वामीजी ने उड़ीसा में पाँच गुरुकुलों की स्थापना की है । पाँच दयानन्द उच्चविद्यालय, चार आश्रम तथा चार धर्मार्थ औषधालय स्वामीजी की व्यवस्था में चलते रहे । स्वामीजी शिक्षा-प्रचार के साथ ही शुद्धि का कार्य भी बड़ी सफलता से किया । स्वामीजी ने २०-२२ हजार बनवासी ईसाइयों को शुद्ध करके पुनः हिन्दूधर्म में सम्मिलित किया और लाखों लोगों को ईसाई होने से बचाया ।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी में धर्मप्रचार और जनसेवा की तीव्र उत्कंठा थी अत: उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय आर्य समाज एवं उससे सम्बन्धित सिद्धान्तों के अनुरूप आजीवन कतिपय संस्थाएं चलाकर उन्हीं के प्रसार-प्रचार में तत्पर रहे ।

विभिन्न प्रतिरोधी शक्तियों एवं अस्वस्थ जीवन से संघर्षशील रहते हुए भी स्वामी जी ने अपने धर्म प्रचार में शिथिलता नहीं आने दिया । ''परन्तु मृत्यु से कोई अजेय नहीं है '' नियम के अनुसार श्री स्वामी जी ने भी ६ सितम्बर सन् २००१ ई० को अपना पार्थिव शरीर त्याग कर परलोक गमन कर लिया।

गत वर्ष दिसम्बर में गुरुकुल पानपोष वेद व्यास में स्वामी जी की जन्म शताब्दी बड़े ही धूम-धाम से मनाई गई ।

(आर्य समाज कलकत्ता के शतवर्षीय इतिहास से)

ओ३म्

आर्य-संसार

वर्ष ६० अंक — ४
चैत्र-वैशाख - २०७५ वि०
दयानन्दाब्द - १९४
सृष्टि सं० - १,९६,०८,५३,११९
अप्रैल — २०१८

आद्य सम्पादक
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय
(स्मृति शेष)

●

सम्पादक :
श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
सहयोगी संपादक :
श्रीमती सरोजिनी शुक्ला
श्री सत्यप्रकाश जायसवाल
पं० योगेशराज उपाध्याय

●

शुल्क : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये

इस अंक की प्रस्तुति

१. स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती		२
२. इस अंक की प्रस्तुति		३
३. मृत्यु-दण्ड से मुक्ति (६२)	—वेद-वीथिका से	४
४. स्वामी जी का स्वकथित जीवन-चरित्र	-पं० लेखराम द्वारा संकलित	८
५. सत्यार्थ प्रकाश काव्य-सुधा (महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश का काव्यानुवाद)	—पं० देवनारायण तिवारी	११
६. कर्म ही जीवन है	-मृदुला अग्रवाल	१४
७. स्वाधीनता संग्राम में महर्षि दयानंद की भूमिका	-परीक्षित मंडल प्रेमी	१७
८. मानव जीवन की महत्ता	-कामता प्रसाद मिश्र	२०
९. संवत् १९९४ की महाशिवरात्री	-पं० उम्मेद सिंह 'विशारद'	२४
१० . आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ		२८

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६

दूरभाष : २२४१-३४३९ *email : aryasamajkolkata@gmail.com*

'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है ।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा ।

मृत्यु-दण्ड से मुक्ति

मा न एकस्मिन्नागसि, मा द्वयोरुतत्रिषु ।
वधीर्मा शूर भूरिषु ।

अथर्व ८-४५-३४

शब्दार्थ :-

मा	=	नहीं
नः	=	हमारे
एकस्मिन्	=	एक (अपराध) पर
आगसि	=	अपराध पर
मा	=	नहीं
द्वयोरुत त्रिषु	=	दो या तीन (अपराध) पर
वधीः मा	=	वध मत करो
भूरिषु	=	अनेकों पर

भावार्थ :-हे शूर वीर इन्द्र ! हमें एक -दो तीन अथवा अनेक अपराधों पर मृत्यु दण्ड से मुक्ति दो ताकि हम अपना सुधार कर सकें ।

विचार विन्दु :

१. जीवन वृत्तरूप है रेखा नहीं है । **२. एक जीवन में सुधार सम्भव नहीं ।**
३.पाप क्षमा नहीं होते । **४. सुधार का मार्ग क्या है ?**

व्याख्या

इस-मंत्र में भगवान् से प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो ! आप तो इन्द्रों के भी इन्द्र, बलवानों से भी बलवान हैं । साथ ही परम दयालु और परम कृपालु भी हैं । मेरी आपसे प्रार्थना है कि यदि मुझसे एक पाप हो जाये तो मुझे मृत्यु-दण्ड मत देना । यदि दो या तीन हो जायें या कई पाप हो जाये तो भी मुझे मृत्यु-दण्ड मत देना, मुझे सुधरने का अवसर दीजिए । आप यदि मृत्यु-दण्ड दे देंगे या जीवन समाप्त कर देंगे तो मैं उस पाप से अपना सुधार कैसे करूंगा ? हे दयालु ! आप हम सुधरने का अवसर प्रदान करें ।

संसार में मुख्यतः दो सिद्धान्त प्रचलन में हैं । एक तो सेमेटिक सम्प्रदाय-यहूदी, ईसाई, मुसलमानों के हैं जो एक ही जन्म मानते हैं। भगवान् की इच्छा हुई और उन्होंने जैसे शरीर बनाया वैसे ही इसमें जीव को डाल दिया । इन सम्प्रदायों के अनुसार, सरल रेखा की तरह जीवन एक बिन्दु से चलता है और मृत्यु के समय दूसरे बिन्दु पर शेष हो जाता है, अर्थात् पुनजन्म नहीं होता। इन सम्प्रदायों में कोई मनुष्य, कोई पशु, कोई शेर या भेड़िया या सांप आदि क्यों होता ह ? योनि का निर्धारण किस आधार पर होता है ?

इसका कोई तर्क बुद्धि संगत उत्तर नहीं मिलता । इन मतों म परमेश्वर जीव का निर्माण करते हैं, कहां से करते हैं, किस उपादान से करते हैं, इसका कुछ पता नहीं है ।

वेद के सिद्धान्तों के अनुसार और भारतीय-मनीषा में जैन, बौद्ध आदि सब सम्प्रदाय पुनर्जन्म मानते हैं । भारत के चिन्तन में जन्म-मरण एक वृत्त की तरह आदि-अंतहीन हैं, जन्म -मरण, मरण-जन्म यह चक्र चलता ही रहता हैं । स्वामी शंकराचार्य ने कहा था –

'पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम्,
पुनरपि जननी जठरे शयनम् ।'

यहां जीवन और मरण का चक्र मोक्ष तक चलता रहता है, जीव अमर है । मरता है शरीर, पुनर्जन्म में शरीर ही पैदा होता है ।

प्रभु ने यह संसार उसमें हमारा जीवन और असंख्य प्राणियों का जीवन क्यों बनाया ? भारतीय ऋषियों ने इस प्रश्न पर चिन्तन किया हैं । उनका कहना हैं – 'भोगापवर्गार्थम् दृश्यम् ।' यह संसार भोग और अपवर्ग अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के लिए बनाया गया हैं । पुण्य का भोग सुख और पाप का भोग दुःख मिलता है । मनुष्य को छोड़कर इतर पशु-प्राणियों की योनियां भोग योनि हैं । उन्हें कर्म का फल नहीं मिलता । वे तो अपनी योनियों में भोग भोगते रहते हैं । मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो कर्म भी करता है और भोग भी भोगता है । मनुष्य-योनि कर्म करने, भोग भोगने और अपवर्ग की साधना करने की योनि है । मनुष्य को मनुष्य जीवन इसलिए मिलता हैं कि वह अपने पाप-कर्मों का दण्ड भोग ले और पुण्य - कर्म करता चले जिससे भोग के द्वारा अपवर्ग का मार्ग प्रशस्त हो । अर्थात् भोग इस प्रकार हो कि मोक्ष की प्राप्ति हो सके ।

मनुष्य एक विचारशील प्राणी है । भगवान् ने इसे कर्म करने की स्वतंत्रता दे रखी है । मनुष्य का अधिकार है कि वह कर्म करे । फल देना परमेश्वर के हाथ में है । मनुष्य अपने कर्मों पर विचार करता है, दूसरे के कर्मों पर विचार करता है, अपने सुख-दुःख और उनके कारणो पर विचार करता है, दूसरो के सुख-दुःख और उनके कर्मों पर भी विचार करता है, और उनसे शिक्षा लेता है कि हम अच्छे कर्म करें, बुरे कर्मों से बचें, जिससे कि हमें पाप के फल से बचने में सहायता मिले । मनुष्य पुण्य करता है तो उसका अच्छा फल मिलता है । विद्यार्थी परिश्रम करता है, तो अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण होता है । कृषक या व्यवसायी परिश्रम करते हैं तो उन्हें अच्छा लाभ मिलता है । पुण्य-कर्मों का फल सुख है और पाप - कर्मो का फल दुःख है । यह मनुष्य को प्रत्यक्ष ही दीखता है । विचारशील व्यक्ति चिन्तन करता है कि हमारे जीवन में पुण्य-कर्म ही हो. ताकि हम कष्ट, रोग, दुःख से बच सकें ।

कर्म फल की व्यवस्था -

कभी-कभी कई लोगों के मन में यह बात उठ सकती है कि जिस जीवन में, जिस शरीर से, जो पाप-पुण्य हुआ है, उसका फल, उसी जीवन में, उसी शरीर को मिल जाता है । प्रस्तुत मंत्र में इस विचार से हट कर परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है कि हे प्रभो ! हमारी भूलों को सुधारने के लिए हमें एक एकाधिक बार (भूरिषु) अवसर दीजिए ।

कर्म फल का सिद्धान्त यह है कि हमारे कर्मों के फल तीन प्रकार के कर्मों पर निर्भर करते हैं - (१) क्रियमाण कर्म - जो हम अभी कर रहे हैं और जिनका फल हमको अभी मिल जाता है। जैसे किसी ने गरिष्ठ भोजन किया तो उसका पाचन बिगड़ गया या स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन किया, खाने-पीने, सोने-जागने में व्यतिक्रम किया तो उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया ।

(२) संचित कर्म ऐसे कर्म हैं जो संस्कारगत हो जाते हैं और इनका परिणाम स्थूल शरीर से ऊपर जाकर सूक्ष्म शरीर को भी प्रभावित कर देता है। ऐसे संचित कर्मों के फल वर्तमान जन्म में और भावी जन्मों में मिलते रहते हैं । कभी-कभी सूक्ष्म शरीर के साथ ही सूक्ष्म शरीर में स्थित मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि भी इनसे प्रभावित हो जाते हैं । मन, बुद्धि, चित्त आदि की अच्छाई, बुराई, मेधा, प्रज्ञा आदि की सबलता निर्बलता जन्म से ही प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं । ये सब संचित कर्मों के ही फल हैं। कई बार शरीर के रोग भी पूर्व जन्म से आते हैं ।

इनकी व्यवस्था सर्वशक्तिमान् परम दयालु, परम कारुणिक परमेश्वर की व्यवस्था में निहित रहती है। किस संचित कर्म का भोग कब प्राप्त होगा, यह परमेश्वर की व्यवस्था पर ही है । संचित कर्मों का यह भोग इस जीवन में भी मिल सकता है और भावी जीवनों में भी मिल सकता है । यह परमेश्वर की निराली व्यवस्था, मनुष्य की समझ के लिए असम्भव नहीं भी हो तो भी अति कठिन योग की साधना से साध्य होगी । इस व्यवस्था को समझने के लिए एक सीधा सा उदाहरण लेते हैं- धरती में अनेक प्रकार के बीज सुरक्षित रहते हैं । जब जिनके उगने, जमने का समय आता है, अनुकूल परिस्थिति पाकर, वे उसी समय उग जाते हैं। आषाढ़ में उगने वाले बीज आषाढ़ में उगेंगे और आश्विन या माघ-फाल्गुन में उगने वाले बीज वहीं पड़े रहेंगे और अपने समय पर अनुकूल परिस्थिति पाकर वे भी उगने के लिए संचित रहेंगे। इसी प्रकार संचित कर्मों की व्यवस्था है । अनुकूल समय आने पर परम प्रभु परमेश्वर उनका भोग हमें दे देते हैं ।

(३) प्रारब्ध कर्म - जिन संचित कर्मों का भोग मिलना आरम्भ हो जाता है उन्हें प्रारब्ध (प्र +आरब्ध आरम्भ किया हुआ) कहते हैं । संचित कर्म प्रारब्ध का कारण बनते हैं और संचित कर्मों का कारण मनुष्य का कर्म या पुरुषार्थ है । इसीलिए कहा जाता है कि पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा होता है क्योंकि पुरुषार्थ ही प्रारब्ध और संचित कर्मों का निर्माता है ।

कर्मों के संबंध में पाप-पुण्य के भेद के संबंध में एक और सच्चाई ध्यान में रखने योग्य है । पाप और पुण्य का आपस में जोड़-घटाव, लेन-देन नहीं होता । पाप और पुण्य विषम राशियां हैं । जैसे गणित में १० घोड़े ऋण-६ गाय नहीं होगा वैसे ही १०० पुण्य - ४० पाप भी नहीं होगा । पुण्य का फल-सुख अलग मिलेगा और पाप का फल-दुख अलग मिलेगा । गंगा का जल निर्मल पवित्र हो तो उसमें स्नान करने से शरीर तो शुद्ध होता है किन्तु किसी भी कर्म से पाप नहीं कटेगा, उसे भोगना ही पड़ेगा -

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'

भारतीय ऋषियों ने एक यज्ञ 'बलिवैश्व देव यज्ञ' बनाया है। जिसका अर्थ यह हैं कि सम्पूर्ण विश्व देव है और उसे हमें बलि, उपहार देना चाहिए । इस यज्ञ में कोढ़ी, लूले-लंगड़े आदि को विशेष रूप से सहायता दी जाती है और शिक्षा ली जाती है कि हम ऐसी कोई भूल न कर बैठें कि हमें भी अन्धा, लूला-लंगड़ा या कोढ़ी बनकर दुःख भोगना पड़े ।

एक विद्वान ने यहां तक कल्पना की है कि भिखारी झोली फैलाकर मांगता हैं–मां ! भीख दो, रोटी दो, भूखे-प्यासे को सहारा दो । विचारशील प्राणी शिक्षा लेता है कि हम कोई पाप न कर बैठें कि जिससे हमें भी अन्धा, लूला बनकर भोगना न पड़े । यह तो सर्वथा सत्य है कि पाप कभी क्षमा नहीं होते, उन्हें भोगना ही पड़ता है । अतः भगवान् से प्रार्थना करते हैं–जगदीश्वर ! हमारा जीवन समाप्त मत करो, हमें सुधरने का अवसर दो । एक जन्म में न सुधर सकें तो दूसरा जन्म दो, ताकि हम अपना सुधार कर सकें ।

'शरण में आये हैं हम तुम्हारी,
दया करो हे दयालु भगवन् ।'

प्रख्यात वैदिक विद्वान् आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री सम्मानित

प्रतिष्ठित वैदिक विद्वान्, ओजस्वी वक्ता, प्रेरक लेखक एवं अध्यात्म पथ के यशस्वी संपादक आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी को आर्य समाज डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली के भव्य सभागार में ठाकुर विक्रम सिंह ट्रस्ट की ओर से शाल, प्रशस्ति-पत्र एवं ५१ हजार रुपये की सम्मान राशि भेंट कर सम्मानित किया गया ।

उन्हें यह सम्मान आर्य संस्कृति रक्षक, क्षत्रियों के गौरव, एवं राष्ट्रनिमार्ण पार्टी के अध्यक्ष ठाकुर विक्रम सिह जी ने विशाल जन समुदाय की उपस्थिति में प्रदान किया ।

खचाखच भरे सभागार में ठाकुर विक्रम सिंह जी ने कहा कि विलक्षण प्रतिभा के धनी आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी ने अपना अमूल्य जीवन आर्य समाज की सेवा में समर्पित कर वैदिक धर्म , मानवता और राष्ट्र की महती सेवा की है । उन्होने देश ही नहीं अपितु विदेशों में भी जाकर वैदिक संस्कृति के प्रचार -प्रसार एवं मानव कल्याण के क्षेत्र में जो रचनात्मक कार्य किया है, वह अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय है ।

समारोह के अध्यक्ष स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी एवं संयोजक डॉ. रूप किशोर शास्त्री जी थे । श्री श्याम जाज् (राष्ट्रीय उपाध्यक्ष, भाजपा), श्री आनन्द चौहान (निदेशक- एमिटी विश्वविद्यालय) एवं श्री धर्मपाल आर्य (प्रधान, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा) की उपस्थिति से कार्यक्रम की गरिमा में वृद्धि हुई ।

इस आयोजन में अनेक विद्वान,पत्रकार, साहित्यकार तथा अनेक आर्यसमाजों एवं विभिन्न संस्थाओं के पदाधिकारियों की उपस्थिति प्रशंसनीय रही । कार्यक्रम का सफल संचालन टंकारा समाचार के सुविख्यात संपादक श्री अजय सहगल ने किया । समारोह के अन्त में प्रीतिभोज का आयोजन किया गया ।

डॉ० सुन्दर लाल कथूरिया
साहित्य संपादक

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जीवन वृत्त

अध्याय–१

पुष्कर के मेले का वृत्तान्त

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी को गुजरात में सम्वत् १८८१ में हुआ था । पूरे भारतवर्ष में स्वामी जी का जन्म दिवस मनाया जाता है । इसी अवसर पर आर्य समाज कलकत्ता ने निर्णय किया कि पं० लेखराम द्वारा संकलित एवं आर्य महामहोपदेशक कविराज श्री रघुनन्दन सिंह निर्मल द्वारा अनूदित महर्षि स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र धारावाहिक प्रकाशित किया जाय, इसी श्रृंखला में प्रस्तुत है यह धारावाहिक जीवन-चरित्र — सम्पादक

(गतांक से आगे)

अध्याय - २

गंगा नदी के तट पर सात वर्ष का जीवन

(फाल्गुन शुदी १, सं० १९२३ से स० १९३० तदनुसार १२ मार्च, १८६७ से सन् १८७३ ई० तक)

कर्णवास में राव कर्णसिंह की उदंडता

पहली भेंट में राव कर्णसिह की धमकी, कई लोगों द्वारा वर्णन: तिलक, गंगापूजन, मूर्तिपूजा का खण्डन करते थे: रंगाचार्य से शास्त्रार्थ का आह्वान - उस मेले पर इस ओर के किसान लोग बहुत इकट्ठे होते हैं और बरौली के रईस राव कर्णसिंह बड़गूजर (ठाकुर) क्षत्रिय सदा गंगास्नान को आते थे । उस वर्ष भी आये और स्वामी जी से मिले । यह क्षत्रिय थोड़े ही दिन पहले लालच के वश में रंगाचार्य्य के शिष्य होकर दग्ध (चक्रांकित) हो चुके थे और गंगा की बड़ी भक्ति से आराधना करते थे । उनके और उनके साथियों के खड़े तिलक और रामपटा का चक्रांकित तिलक देखकर स्वामी जी महाराज हँसे और बड़े आदर-सत्कार से बैठने को कहा परन्तु रईस साहब स्वामी जी के उद्देश्य को पहले ही से सुन चुके थे (क्योंकि वह इसी कस्बे कर्णवास में ब्याहे हुए हैं) । मुख को कुछ थोड़ा सा बिगाड़कर बोले कि कहां बैठें ? स्वामी जी ने आज्ञा दी कि जहाँ इच्छा हो। इस पर रईस ने कहा कि जहां तुम बैठे हो उस स्थान पर बैठेंगे । स्वामी जी महाराज शीतलपाटी के एक सिरे की ओर हट कर कहने लगे कि आइये बैठिये । बैठते ही रईस ने क्रोध-भरे वाक्यों से कहा कि बाबा जी ! ‘ तुम्हारा यह गंगा आदि को न मानना अच्छा नहीं। यदि हमारे सामने कुछ खंडन-मंडन की बातें कीं तो बुरा परिणाम होगा ।’ स्वामी जी महाराज ने उनके कटु वाक्यों को सहन कर और किंचित् भी चिन्ता न करते हुए, सिंहवत् श्रृंगाल से कुछ भी भयभीत न होकर, बड़ी गम्भीरता, शान्ति और मधुर वाक्यों से धर्म का उपदेश करते हुए चक्रांकित मत का भी भली प्रकार खंडन किया और कहा

कि तुम अपने रंगाचार्य को शास्त्रार्थ के निमित उद्यत करो । हम उनके सम्प्रदाय का खंडन करने को तैयार हैं। यह सुन रईस ने कुपित हो मूर्खता में आ कुछ दो-एक कटु वाक्य कहे। इन पर ठाकुर किशनसिंह जी ने बड़ी शूरता से उसी समय रईस से कहा कि ''बस ! अब आगे कुछ बका तो ये आपकी जिह्वा भारी मारपीट करा देगी । भले मनुष्यों को सभा में योग्य बोलना चाहिये । आप धर्मोपदेश कर रहे महात्मा को कटु वाक्य न कहिये । यदि सुनना नहीं चाहते तो चले जाइये '' यह तीव्र वचन सुनकर रईस बरौली चुपके से उठकर अपने डेरे को चले गये और सभास्थ लोगों ने रईस की बड़ी निन्दा की परन्तु स्वामी जी महाराज ने इतना कह कर बस किया -

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

तस्माद् धर्मो न हातव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।। और फिर वैसा उपदेश करने लगे ।

(इसी वृतान्त को) - पंडित भूमित्र जी कहते है कि जब राव कर्णसिंह रईस बरौली यहाँ गंगास्नान के अवसर पर स्वामी जी के दर्शन को आये तो स्वामी जी ने देखकर संस्कृत में कहा कि तुम ने क्षत्रिय होकर यह चंडाल की सी आकृति क्यों कर ली? उसने न समझा और कहा कि मैं समझा नहीं हूँ । स्वामी जी ने गुरु टीकाराम को कहा कि तुम समझा दो । वह डरने लगे क्योंकि उसके साथ दस बारह शस्त्रधारी मनुष्य थे । स्वामी जी ने झिड़क कर कहा कि तुम भय मत करो, जैसा मैंने कहा है वैसा ही समझा दो । इसलिए टीकाराम ने उसको भाषा में समझा दिया कि स्वामी जी महाराज यह कहते हैं कि आपने क्षत्रियों का धर्म छोड़कर यह भिखारियों का चिन्ह मस्तक पर क्यों धारण किया हुआ है ? परन्तु वह समझ गया और एकाएक लाल-पीला होकर स्वामी जी को गाली देने लगा। स्वामी जी उसकी गाली को सुनकर हँसकर कहने लगे कि यदि तुम शस्त्रार्थ करना चाहते हो तो जयपुर, धौलपुर के राजाओं के साथ जा लड़ो और यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो अपने गुरु रंगाचार्य को वृन्दावन से बुला लो और शास्त्रार्थ कराओ और ताम्रपत्र पर अपने गुरु की और मेरी यह प्रतिज्ञा लिखवाओ कि यदि तुम्हारा वह मत झूठा है तो रंगाचार्य सात जन्म नरक में रहे और यदि मेरा वेदोक्त मत झूठा हो तो मैं सात जन्म तक नरक निवास करूँ । अन्यथा यह तुम्हारी मूर्खता है कि जो तुम बे-समझे-बूझे बालकों के समान व्यवहार करते हो । इस पर वह और भी अधिक मारपीट को उद्यत हुआ और (उसने) तलवार की मूठ पर हाथ रखा । उसके साथ बलदेब प्रसाद पहलवान था उसने कहा कि नहीं मैं इसको ठीक करता हूँ । वह आगे बढ़ा और स्वामी जी पर हाथ डालना चाहा परन्तु स्वामी जी ने ज्योंही उसके हाथ को पकड़कर धक्का (झटका) दिया, वह पीछे जा पड़ा । उस समय स्वामी जी ने कहा कि 'रे धूर्त ?' । इस पर ठाकुर किशनसिंह जी लट्ठ लेकर खड़े हो गये और कहा कि यदि तुम महात्मा को तनिक भी छेड़ोगे तो मारे लट्ठों के तुम्हारा अभिमान चूर्ण कर देंगे । इसलिए वे दुम दबाकर वहां से चल दिये । उस समय स्वामी जी के पास पचास के लगभग मनुष्य बैठे हुए थे ।

पंडित कृष्णवल्लभ, पुजारी मन्दिर कर्णवास ने इस वृतान्त को इस प्रकार वर्णन किया —'राव साहब स्वामी जी के पास गये । बातचीत के बीच में कहा कि 'तुम महाराज रंगाचार्य के सामने कीड़े के तुल्य हो और फिर कहा कि तुझसे उसके आगे जूतियाँ उठाते

है ।' स्वामी जी ने कहा कि ' रंगाचार्यस्य का गणना मम समीपे एक आगत: सहस्त्रा आगता लक्षा आगता: शास्त्रार्थं कुरु' । उसने फिर उसकी अनुचित प्रशंसा की और स्वामी जी को कटुवाक्य ही नहीं कहे प्रत्युत बुरी गालियां दीं । उस समय वीरासन पर बैठे हुए थे ; एक हाथ तलवार की मूठ पर था और दूसरा हाथ कभी मूठ पर और कभी उनकी ओर संकेत करता था । एक पांव पर अपना भार रखे बैठा हुआ गाली देता था और क्रोध से लाल हो रहा था परन्तु स्वामी जी पद्मासन पर बैठे हुए हँसते जाते थे और यही कहते जाते थे **'रंगाचार्यस्य'** इत्यादि ।

मास्टर गोपाल सिंह वर्मा क्षत्रिय, कर्णवास निवासी, ने इस प्रकार वर्णन किया— 'कि जब राव साहब स्वामी जी के दर्शनों को गये तो स्वामी जी ने पूछा कि तुमने शरीर क्यों दग्ध कराया हुआ है और क्यों चक्रांकित हुए ? तुम क्षत्रिय हो तुमको ऐसा करना उचित नहीं है । ' इतनी बात स्वामी जी से सुनकर वह बिगड़ा और कहा कि 'यह हमारा परम मत है, इसको तुम किस प्रकार बुरा कहते हो और हम अभी रंगाचार्य स्वामी को वृन्दावन में पत्र भेजते हैं; शास्त्रार्थ से जो ठीक हो वही मत सच्चा है । तुमने हमारे मत को बुरा कहा हम तुमको इसका मजा चखायेंगे ।' स्वामी जी ने इसके उत्तर में कहा कि 'यदि तू हमसे लड़ना चाहता है तो अपने सिपाहियों में से एक-एक को खड़ा कर दे और जो शास्त्रार्थ करना चाहे तो रंगाचार्य को यहां पर बुलाने और एक पत्र इस प्रतिज्ञा का लिखकर (तू जो गंगा जी को मानता है) तू गंगा जी में दे कि जो हारे वह अपने धर्म को छोड़े । 'तलवार पर भी उसने हाथ रखा था, मैं उस समय उपस्थित न था—यह सब सुना है ।'

क्रमश: ....

" आर्य समाज श्रृंगारनगर में १०१ कुण्डीय यज्ञ

नव संवत्सर के उपलक्ष्य में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, वैक्रमाब्द २०७५, रविवार, १८ मार्च २०१८ को आर्य समाज श्रृंगारनगर, लखनऊ द्वारा निकटवर्ती पार्क में १०१ कुण्डीय यज्ञ कराया गया । आचार्य रूपचन्द्र ' दीपक' समूहिक यज्ञ के सञ्चालक और पं० गिरजेश कुमार सह- सञ्चालक रहे । प्रत्येक वर्ष की भाँति दो आर्य महिलाओं और दो पुरुषों को सम्मानित किया गया- (१) स्वामी वीरेन्द्र परिव्राजक (डालीगंज), (२) श्री अमृत प्रकाश (राय-बरेली रोड), (३) श्रीमती उषा गुप्ता (सदर),(४) श्रीमती करुणा मोहन (लालबाग) महात्मा प्रेम मुनि जी ने आर्य पुरुषों और महापौर श्रीमती संयुक्ता भाटिया ने आर्य महिलाओं को शाल ओढ़ाकर माल्यार्पण किया । तदनन्तर जल-पान कराकर कार्यक्रम सम्पन्न किया गया ।

राकेश माहना, मन्त्री ।

भवदीय,

रूपचन्द्र दीपक

(आचार्य रूपचन्द्र 'दीपक')

सत्यार्थ प्रकाश काव्य सुधा

महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश का काव्यानुवाद

– पं० देवनारायण तिवारी 'निर्भीक'

मो0 : 9830420496

(११)

श्री पं० देवनारायण तिवारी – आर्य समाज के उपदेशक, विद्वान् और कवि हैं, इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम, योगेश्वर एकादशोपनिषद् (काव्य) एवं श्री कृष्ण चरित मानस (रामचरित मानस की भाषा-शैली में) ४ महाकाव्य हैं। पं० जी ने सत्यार्थ प्रकाश का भी छन्दबद्ध भावानुवाद किया है। आर्य समाज कलकत्ता ने इसे आर्य संसार मासिक पत्र में धारावाहिक रूप से प्रकाशित करने का निश्चय किया है।

यह ग्यारहवीं कड़ी आपके समक्ष है। – सम्पादक

प्रथम समुल्लास (गत मार्च अङ्क से आगे)

(बन्ध बन्धने) इससे **''बन्धु''** शब्द सिद्ध होता है।
य स्वस्मिन चराचरं जगत् बध्नाति बन्धु वद्धर्मात्मनां
सुखाय सहायो वा वर्तते स बन्धु ॥
छन्द- जो निज नियम में लोक औ लोकान्तरों को राखता।
सारे जगत् को बांध कर नियमानुसार सँवारता ॥
सबका सहायक वह सहोदर के समान सदा बना ॥
रखता परिधि में है सभी को, और सुख देता घना ॥ ११२ ॥

उसकी परिधि औ नियम है अनुलंघ्य सबके हित सदा।
सब लोक की रक्षा करे धारण करे भी सर्वदा ॥
है सकल सुख दाता सभी का, ज्यों सहोदर जन करें।
इस हेतु कहते **''बन्धु''**, उसको ही वरण बुधजन करें ॥ ११३ ॥

(पा रक्षणे) इस धातु से **''पिता''** शब्द सिद्ध हुआ है ॥
यः पाति सर्वान् स पिता ॥
छन्द- जैसे पिता सन्तान अपनी पालता है प्रेम से।
उत्कर्ष सबका चाहता है, अति कृपा कर नियम से।
त्यों ब्रह्म भी है चाहता सब जीव सुख में ही रहें ॥
रक्षा करें प्रतिक्षण सदा, इससे **''पिता''** उसको कहें ॥ ११४ ॥

(यो पितृणां पिता स पितामहः)
छन्द - वह ही पिताओं का पिता भी है, अनन्त अपार है ।
है नाम इस कारण **''पितामह''** भी, वही जग-सार है ॥

(यः पिता महानां पिता स प्रपितामहः ।।)
छन्द - जो है पिताओं का पिता इस विश्व का जो मूल है ।
सारे पितर हैं पुत्र सम उसके, वही भव-कूल है ॥
इस हेतु कहते हैं ''पितामह'' भी सभी जगदीश को ।
स्मरण करते हैं विबुध इस भाव से सर्वेश को ॥ ११५ ॥

(यो मितीते मानयति सर्वान् जीवान् स माता ।।)
छन्द - जैसे कृपा से युक्त जननी पालती संतान को ॥
सुख और उन्नति चाहती है, सुमिरती भगवान को ॥
त्यों ईश भी सब जीवगण की बृद्धि ही है चाहता ॥
इस हेतु **''माता''** नाम उसका वह दुखों को दाहता ॥ ११६॥

(चर गति भक्षणयोः) आङ्० पूर्वक इस धातु से **''आचार्य''** शब्द सिद्ध होता है ।
य आचारं ग्राहयति, सर्वा विद्या बोधयति स आचार्य ईश्वर :।।
छन्द - जो सत्य का आचार ही है ग्रहण करता सर्वदा ॥
अर्थात् सत्याचारियों को शरण वह लेता सदा ॥
है सत्य विद्या-स्रोत वह ही ज्ञान देता जीव को ।
ज्ञानी बनाता सर्वथा आचार्य सम वह जीव को ॥ ११७ ॥

इस हेतु है **''आचार्य''** उसका एक नाम पवित्रतम् ॥
ध्यायें सदा उसको सभी, भव-बन्ध से हों मुक्त हम ॥ ११८ ॥
(गृ शब्दे) इस धातु से **''गुरु''** शब्द बना है ।
यो घर्म्यान् गृणात्युपदिशति स गुरु ।''
स पूर्वषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ योगदर्शन समाधिपादे सूत्र २६ ॥
छन्द- जिसने प्रतिष्ठा सत्य की औ धर्म की जग में किया ।
प्रारम्भ में श्रुतिज्ञान देकर ज्ञानमय जग कर दिया ॥
अग्न्यादि चार महर्षियों का और ब्रह्मा-आदि का ।
भी है गुरू वह ब्रह्म ही, अक्षर, अनीह अनादि का ॥ ११९ ॥

स्वामी वही है, नाश उसका है कभी होतां नहीं ।
उपदेश करता विश्व को, वह वास करता सब कहीं ॥
इस हेतु उस परमात्मा का नाम **''गुरु''** भी है कहा ।
उसकी शरण है अति सुखद, वह पूर्ण है सबसे महा ॥ १२० ॥

(अज गति क्षेपणयो:, जनी प्रादुर्भावे । इस धातु से अज शब्द
बनता है **'यो अजति सृष्टि प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन्
पदार्थान् प्रक्षिपति, जानाति वा कदाचिन्ने जायते सोऽज:।।'**
छन्द- आकाश आदि समस्त भूतों के सकल परमाणु को ।
संगठित कर वह सृष्टि रचता प्रकृति अङ्ग महान् को ॥
जो जन्म देता जीव को सम्बन्ध करके गात का ।
पर स्वयं रहता है अजन्मा सङ्ग तजकर गात का ॥ १२१॥

है जन्म-मरण विहीन वह प्रभु इसलिए **''अज''** नाम है ।
वह निर्विकार अदेह है, साकार लेकिन काम है ॥
(बृह बृहि वृद्धा) इन धातुओं से **''ब्रह्मा''** शब्द सिद्ध होता है।
योऽखिलं जगन्निर्माणेन वृंहति बर्धयति स ब्रह्म।।
छन्द - निमार्ण करता जो जगत् का औ बढ़ाता है उसे ।
इस हेतु **''ब्रह्मा''**-नाम से भी मानते है सब उसे ॥ १२२ ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मा ॥ तैत्तिरीयोपनिषद् ब० ब०
सन्तीति संतस्तेषु सत्सु साधु तत्सत्यम् । यज्जानाति
चराऽचरं जगत्तज्ज्ञानम् । न विद्यतेऽन्तोऽवधिर्मर्यादा यस्य
तदनन्तम् । सर्वेभ्यो बृहत्वात् ब्रह्म । साधनोति सकल कार्याणि साधु: ॥
छन्द- जो विद्यमान पदार्थ हों, कहते उन्हें **''सत् ''** शास्त्र सब ।
उनमें सदा व्यापक रहें जो औ चलावे विश्व सब
जो श्रेष्ठ हो सब भांति से अरु सिद्ध कार्य सकल करें ।
फिर सिद्ध हो सबमें स्वयं, औ सिद्ध ही गति बल भरे ॥ १२३ ॥

संतत रखे गतिशील सबको भर निरन्तरता घनी ॥
जाने सकल गति विश्व की, सब पर रखे छाया घनी ॥
जिसका न कोई माप हो, जिसका न कोई अन्त हो
परिमाण हीन, समय रहित निस्सीम और अनन्त हो ॥ १२४ ॥

क्रमश: ....

कर्म ही जीवन है

-मृदुला अग्रवाल

कर्म की कसौटी है:- प्राणियों का उत्थान, संसार एवं विश्व का कल्याण । जब आत्मा , मन और इन्द्रिय तीनों का योग होता है तभी कोई कर्म सम्पन्न हो पाता है। इन्द्रियां मन से संयुक्त होकर ही क्रियाशील होती हैं । मनुष्य-जीवन सुखदायी सुकर्म करने के लिये ही उपलब्ध हुआ है। कोई भी मनुष्य एक क्षण भी निष्क्रिय नहीं रहता है । उसके अन्तःकरण में, चिन्तन में, हर समय कुछ न कुछ कर्म तो चलता ही रहता है। अवचेतन मन में समाई हुई प्रकृति से प्राप्त अपने स्वभाव से परवश हुआ भी वह कर्म तो करता ही रहता है । अच्छे बुरे कर्मों के अच्छे बुरे फल को भोगना तो निश्चित है । बिना भोगे उन कर्मों का क्षय भी नहीं होता ।

सामान्यतः कर्म दो प्रकार के होते हैं:-

१) सांख्य (ज्ञान योग) - जिसमें कर्मो का संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रियों और शरीर द्वारा होने वाले संपूर्ण कर्मों में कर्त्तापन का त्याग, तत्त्व-ज्ञान द्वारा मोह का निराकरण, आत्मा-विषयक निश्चित ज्ञान का नाम सांख्य है ।

२) निष्काम (कर्मयोग)- समत्वबुद्धि से भगवत्-अर्थ कर्मों का करना, कर्त्तव्य समझकर बिना फल की कामना के सब प्राणियों के हित में कर्मों को संपादित करना, भगवत्-स्वरूप का मनन करना -ये सब 'निष्काम-कर्म' हैं । निष्काम-कर्म साधन में सुगम है, इसलिये श्रेष्ठ भी माना जाता है । जो ज्ञानयोग एवं कर्मयोग को एक समान देखता है, वही यर्थाथ देखता है, क्योंकि दोनों के ही फलस्वरूप परब्रह्म परमात्मा की ही प्राप्ति होती है ।

मीमांसा भी कर्मकाण्ड में विश्वास करता है । यज्ञादि कर्म से पुण्य अर्जित कर स्वर्ग का आनन्द भोगना एवं पुण्य क्षीण होने पर वापस धरती पर आकर पुनः सुकर्मो का संग्रह करना ही मीमांसा के कर्म की परिभाषा है । भगवत्गीता, अध्याय -९, श्लोक -२१ में भी ऐसा ही कुछ विवरण है ।

परमेश्वर ने मानव-देह और उसके अवयव कर्म करने के लिये ही दिये हैं । अतः परमात्मा को हमारे लिए कर्म-मार्ग अभीष्ट है, कर्म-त्याग नहीं । हमें अपने जीवन को कर्म-प्रधान बनाना चाहिये । जीवन का प्रत्येक क्षण व्यर्थ गँवाने के लिये नहीं है । समय को नष्ट करना सबसे बड़ा अपराध है, उससे जीवन निरर्थक हो जाता है । अगर आलस्य के वशीभूत होकर हम अपने देहावयवों को निकम्मा बना देते हैं तो कालान्तर में वे अवयव काम करने की शक्ति ही खो बैठते हैं (जैसे- हाथ,पैर इत्यादि)।

''ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितिः ।।

–अथर्ववेद, काण्ड-११, सूक्त- ७,मन्त्र-२४।।

अर्थात् परमेश्वर ने सब उत्तम कर्म, वेद आदि शास्त्र और सारे सांसारिक पदार्थ मनुष्य के सुख के लिए प्रकट किये हैं । ऋग्वेद में स्तुति-विद्यायें, सामवेद में मोक्ष- ज्ञान, यजुर्वेद में विद्वानों का सत्कार, अथर्ववेद में आनन्दप्रद कर्म, पुराणों में पुरातन वृत्तान्त, आकाश में वर्त्तमान सूर्य के आकर्षण में ठहरे हुए सब गतिमान लोक-यह सब परमात्मा से ही उत्पन्न हुए हैं ।

कुछ लोग कर्म करने में व्यस्त रहते हैं और कुछ लोग उनके कर्मों पर आराम का जीवन गुजारते हैं। हमारे भारतीय परिवारों में यह प्रथा बहुत प्रचलित है, जहाँ सारा परिवार कर्महीन होकर एक ही कर्त्ता पर निर्भर रहता है।

हमें कर्म भी भद्र करने चाहिये, जिनसे सुख प्राप्त हो एवं सबका कल्याण हो। इस जगत् में उत्तम शिक्षा, नम्र स्वभाव, सत्य धर्म, योगाभ्यास, उचित आहार-विहार, मीठी वाणी, सहानुभूति एवं करुणा, विज्ञान का सम्यक् ग्रहण करना, परोपकार, विद्या की प्राप्ति, अविद्या की हानि, उत्तम रीति से धन का लाभ, दरिद्रता का विनाश- इस तरह के कर्म जीवन में आवश्यक हैं। जीवन में कर्म बुद्धिपूर्वक, विचारपूर्वक, यज्ञभावपूर्वक, परमार्थभाव से लोकहितार्थ कर्म (राजा जनक की भांति), अनासक्ति पूर्वक कर्म, धैर्यपूर्ण, विपरीत परिस्थितियों में भी विचलित न होने वाले कर्म- ये सम्पूर्ण कर्म मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनाते हैं। श्रेष्ठ पुरुष जो-जो कर्म करता है, अन्य पुरुष उसके अनुकूल ही वर्तते हैं। विद्वान् लोग सब ऋतुओं में योग्य सामग्री द्वारा यज्ञ करके श्रेष्ठ कर्म करते रहें और आसक्ति वाले अज्ञानियों से उचित कर्म कराते रहें, क्योंकि श्रेष्ठ कर्म समाप्त कर लेने वाले ही आनन्द पद के अधिकारी होते हैं। यज्ञ भी एक उत्तम कर्म है। यज्ञ एवं दान आदि शुभ कर्म करने वालों के चित्त और आत्मा दृढ़ संकल्पी एवं बलवान होते हैं।

''यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति,
यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते'' **-सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास ।।**

जीव जिसका मन से ध्यान करता है उसको वाणी से बोलता है, जिसको वाणी से बोलता है उसको कर्म से करता है, जिसको कर्म से करता है उसी को प्राप्त होता है। इस मन्त्र में मन, वाणी और कर्म तीनों की मधुरता का वर्णन है।

वे ही मनुष्य असुर, दैत्य, राक्षस तथा पिशाच आदि हैं जो आत्मा में और जानते, वाणी से और बोलते और करते कुछ और ही हैं। वे कभी अविद्यारूप दुःखसागर से पार हो आनन्द को प्राप्त नहीं होते। परन्तु जो आत्मा से मन, वाणी और कर्म से निष्कपट एक सा आचरण करते हैं वे ही आर्य सौभाग्यवान् सब जगत् को पवित्र करते हुए इस लोक और मरने के बाद परलोक में भी अतुल सुख भोगते हैं।

विचार कर्म के उद्‌गम होते हैं। जब विचार उच्च होंगे तो कर्म भी उच्चतर होते चले जावेंगे। अपनी दुर्बलताओं को पहचानकर, उससे ऊपर उठने का अभ्यास डालना और लक्ष्य प्राप्ति में जुट जाना ही उच्च कर्म है।

सब मनुष्यों को उचित है कि मन, वचन, कर्म से कभी भी पापकर्मों को न करे। सन्ध्या के मन्त्रों में इसको **''अघमर्षण''** का नाम दिया है। क्योंकि भगवान सबको अन्तर्यामीरूप से सर्वदा देखता रहता है।

''याद्राध्यंवरुणो यो निमत्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्त्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ।।''
-ऋग्वेद, मंडल-२, सूक्त-३८, मन्त्र-८।।

जितने इस जगत् में जीव हैं वे अपने कर्मजन्य फल को विद्यमान शरीर में और पीछे भी प्राप्त होते हैं। जैसे पशु गोपाल से नियम में रक्खा हुआ प्राप्तव्य स्थान को प्राप्त होता है, वैसे जगदीश्वर जीवों से अनुष्ठित कर्मों के अनुसार सुख-दु:ख और निकृष्ट, मध्यम तथा उत्तम जन्मों को देता है।

''जीव कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र है।''

-सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास-८ ।।

मनुष्य के गुण और कर्मों के विभाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण- व्यवस्था भी रची गई है।

'' कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतए सभा :।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।''

- यजुर्वेद, अध्याय -४०, मन्त्र-२ ।।

मनुष्य इस संसार में वेदोक्त निष्काम कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष जीवन की इच्छा करे। इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म में प्रवृत्तमान-अधर्मयुक्त अवैदिक काम्यकर्म में लिप्त नहीं होता। जैसे-जैसे वह सुकर्मों की चेष्टा करता है, वैसे-वैसे पापकर्म की बुद्धि की निवृत्ति होती है। विद्या, अवस्था एवं सुशीलता बढ़ती है।

श्रुति ग्रन्थों के नित्य स्वाध्याय और उन पर सतत चिन्तन के परिणाम स्वरूप जो श्रुति ज्ञान उपलब्ध होता है उससे निष्ठापूर्वक और नि:स्वार्थ कर्म करते बनता है, जिससे मन के शान्त होने में मदद मिलती है। अपनी मन:शक्ति को अनुशासन में लाकर 'कर्मप्रधान-जीवन' का आसक्तिरहित उपभोग करें। अपने आप जो कुछ आ प्राप्त हो उसी में संतुष्ट रहना चाहिये। संतोष का तात्पर्य अकर्मण्यता नहीं है। वेद ने हमें त्याग की भावना दी है। **''तेन त्यत्तेन भुंजिथा ''** अर्थात् त्यागपूर्वक भोग करो। वेद की पवित्र शिक्षाओं को मानकर तदनुसार कर्मनिष्ठ होकर परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व को सुखी करो। जगत् के कार्य व्यवहारों में व्यस्त रहते हुए भी हमें हमेशा अपने अन्त:करण में परमात्मा को अनुभव करते रहना चाहिये। मनुष्य अपने कर्मों के आधार पर ही अगला जन्म लेता है। मानव- जीवन के चरित्र की सम्पन्नता सही कर्मों से होती है।

''बड़े भाग मानुष तनु पावा, सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा'' -तुलसीदास कृत रामचरित मानस।।

परमात्मा की असीम कृपा से मानव-देह रूपी सर्वश्रेष्ठ योनि मिली है- इसका सदुपयोग लोक-कल्याण हेतु करें।

''वेद सम्पूर्ण कर्मों का बोधक है।'' जिन कर्मों को मनुष्य कर्त्तव्य या धर्म समझकर करता है, वेद इसी की ओर निर्देश करता है। जीव हर क्षण कर्म में लगा रहता है, क्योंकि हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। इस कर्मक्षेत्र-संसार में उसे बार-बार प्रविष्ट होना पड़ता है। उसका जीवन कर्म-रहित नहीं होता, इसलिये **''कर्म ही जीवन है।''**

मृदुला अग्रवाल
१९ सी, सरत बोस रोड,
कोलकाता- 700020

मोबाइल न०-9836841051

स्वाधीनता संग्राम में महर्षि दयानंद की भूमिका

-परीक्षित मंडल प्रेमी

आध्यात्मभूमि भारत, ऋषि-मुनियों, संबुद्ध संतों की साधनास्थली आर्यावर्त ब्रिटिश साम्राज्यवादी दासता की कुटिल श्रृंखलाओं में आबद्ध थी। **'माताभूमिः पूत्रोऽहम् पृथिव्याः'** अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ- के वैदिक उद्घोष से दिव्य-प्रेरणा प्राप्तकर भारतमाता के वरेण्य- वीर सपूत महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती ने स्वराष्ट्र की विषम-दिपन्नावस्था पर दृष्टिपात किया। भारतमाता के धीरोदात्त अवं धर्मधुरंधर वीर सपूत स्वामी दयानंद सरस्वती का हृदय अपमान की ज्वाला से विदग्ध हो उठा। 'गीता' के कर्मयोग का प्रत्यक्ष आचरण करने वाले अद्भुत कर्मयोगी परमाचार्य प्रवर स्वामी दयानंद सरस्वती ने देखा कि जिस शस्य-श्यामला, सुजलाम्, सुफलाम् पुण्यभूमि भारत के मस्तक पर गौरव-गिरींद्र की रजत हिममंडित मेखला राजमुकुट के तुल्य विद्यमान है, गंगा, यमुना, सरस्वती और शुतुद्रि जिसका कंठहार है तथा विंध्यमेखला की श्रृंखलाएँ हैं करधनी, वही मातृभूमि भारत पराधीन पाश में आबद्ध है, जिस विमल वरदायिनी भारतमाता के चारु चरणतल को नील सिंधु जल अहर्निश धोता है, उसी भव्य-भास्वकर भारत के सुभग गले में अँगरेजी दासता का यह त्रासक तौक, सार्वभौमिक-जगद्गुरु के पद पर समासीन आर्यावर्त का यह अपमान महर्षि दयानंद सरस्वती के कलेजे में शूल-सा चुभने लगा। इन तरुण तपस्वी की सुदृढ़ अवयव की ऊर्जस्वित स्फीत शिराएँ मचल उठीं। इन्होंने आध्यात्म प्रवण भारत की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाने में अपने प्राण-पौरुष की आहुतियाँ दीं। आज भी महर्षि प्रवर का अम्लान रुधिर राष्ट्रीय स्वतंत्रता-तरुवर के बीज का काम करता है। यह वरेण्य-ऋषि दयानंद सरस्वती की धृति-मति विवेक की विशेषता है।

यह निर्विवाद, निर्भ्रांत और परीक्षित सत्य है कि 'राजनीति' शब्द आधुनिक युग की देन है। प्राचीन आर्षवाङ्गमय में 'राजधर्म' शब्द का विपुल प्रयोग हुआ है। 'धर्म' शब्द उस समय इतना व्यापक और विशद अर्थ का द्योतक था कि जीवन का कोई अंग उसके बाहर नहीं था। जातीय और राष्ट्रीय-गौरव-गरिमा भी इस राजधर्म के आवश्यक अंग थे। जब विदेशियों और विधर्मियों ने इस स्पर्शमणि देश पर आक्रमण प्रारंभ किए, तब स्वधर्म, स्वजाति, स्वभाषा, स्वदेशी और स्वराष्ट्र के गौरव की रक्षा के लिए उनसे लोहा लेना भी इस राजधर्म का ही एक अंग था। इसी राजधर्म से धार्मिक, सामाजिक सुधार तथा विस्तृत सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं राजनीतिक चेतना को स्पंदित किया जाता था। इस राजधर्म का वर्णन आर्षवाङ्गमय से लेकर पुराण और इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है। यह राजधर्म अपने आगोश में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों को समाहित करता है। इस प्रकार इसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक और विशद है। आधुनिक युग में

सांस्कृतिक और आध्यात्मिक अस्मिता के क्षरणमय संकटकाल में भारत ने अनेक सामाजिक, धार्मिक आदि सुधार आंदोलनों का सूत्रपात किया, जो आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की पूर्व पीठिका सिद्ध हुए ।

भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के शलाका पुरुष महर्षि दयानंद सरस्वती की विलक्षण प्रतिभा प्रभा कर्मण्य-कर्मनिष्ठ साधना तथा सृजनात्मक विशाल विचारों ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को अभूतपूर्व सशक्त आधार प्रदान किया । उपलब्ध जानकारी के अनुसार सन् १८५७ में आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानंद सरस्वती की उम्र केवल तैंतीस साल की थी । राष्ट्र चेतना के समर्थ पुरोधा स्वामी दयानंद सरस्वती कीं जीवनी का वर्ष, प्रतिवर्ष का यथाक्रम विवरण उपलब्ध है, परन्तु सन् १८५७-५८ में वे कहाँ रहे और क्या करते रहे, इसका कहीं कोई विवरण नहीं मिलता, यह एक चुप्पी ही खास है, क्योंकि 'खामोशी' भी एक 'अंदाजे बयाँ' होती है । सन् १८५७ की राज्यक्रांति से राष्ट्रीय क्रांति के वैतालिक अग्रदूत स्वामी दयानंद सरस्वती अपरिचित अनभिज्ञ नहीं थे । इसका सबसे पुष्ट प्रमाण इनके अमरग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' से ही मिल जाता है । इस ग्रंथ के एकादश समुल्लास में इन्होंने संवत् १९१४ (सन् १८५७) की घटना का उल्लेख किया है जिसमें अँगरेजों ने रणछोड़जी के मंदिर पर गोलाबारी की थी और कच्छ-काठियावाड़ के बाघेरों ने अँगरेजी सेना का मुकाबला किया था । इस महत्त्पूर्ण घटना का उल्लेख किसी अन्य भारतीय इतिहास लेखक ने नहीं किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि दयानंद सरस्वती इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी थे । प्रत्यक्षदर्शी न भी हों, पर परिचित तो अवश्य थे । सन् १८५७ की भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख नेताओं से वैदिक विचारवाद के समर्थ पुरोधा प्राज्ञदर्शी दयानंद सरस्वती के परिचित होने के उत्कृष्ट प्रमाण मिलते हैं । यह सर्वतोभावेन सत्य है कि स्वतंत्रचेता स्वामी दयानंद सरस्वती के परिचित होने के उत्कृष्ट प्रमाण मिलते हैं । यह सर्वतोभावेन सत्य है कि स्वतंत्रचेता स्वामी दयानंद सरस्वती के परमगुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती का राज्यक्रांति के सुविख्यात नेताओं से घनिष्ठ संपर्क और संबंध था । इसलिए यह नितांत संभव है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम में राष्ट्र चेतना के चंचरीक स्वामी दयानंद सरस्वती का प्राधिकृत योगदान रहा हो ।

भारतवर्ष के राजनीतिक इतिहास में यद्यपि स्वामी दयानंद सरस्वती के अमोघ राजनीतिक योगदान की पूर्ण रूपरेखा अभी ऐतिहासिक शोध का विषय है तथापि स्वामी दयानंद की राजनीति में गहन योगदान असंदिग्ध है । यह निर्विवाद सत्य है कि स्वामी दयानंद ही पिछली सदी के प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने अच्छे से अच्छे विदेशी शासक की तुलना में स्वराज को ही महार्घ महत्त्व दिया । इन्होंने वेद मंत्रों का राजनीतिक-परक और आध्यात्म-विज्ञान-परक अर्थ को प्रतिष्ठित किया और आर्य समाज के संघटन को लोकतंत्र पर आधारित एक सामानांतर सरकार का रूप दिया । इन्होंने बारंबार उन स्थानों की यात्रा की, जहाँ अँगरेजों की सैनिक छावनियाँ थीं और यह निर्भांत सत्य है कि इन्होंने मुम्बई में १० अप्रैल १८७५ को विधिवत् आर्य समाज की स्थापना की । स्वामी दयानंद के महाराष्ट्र के तत्कालीन

संस्कृत के विद्वान पं० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर तथा विष्णु शास्त्री चिपलूणकर उनकी देशभक्ति की भूरिश: प्रशंसक थे ।

अस्मिता बोध और आत्मबोथ की चेतना को आत्मसात करने वाले उदारचेता महर्षि दयानंद सरस्वती तो हमारी आर्य सनातन वैदिक संस्कृति के जाज्वल्यमान ज्योति पुंज थे । वे भारतीय गुरू परंपरा में 'शिलाधर्मी' गुरू नहीं थे, बल्कि 'आकाशधर्मी' गुरु थे जिनकी आर्य सनातन साधना तथा अमृत संदीप्त आलोक की अनंत आभा मानसरोवर में खिले कमल जैसी शुभ्र-शोभन है । इन्होंने अपने अप्रतिम गत्यात्मक व्यक्तित्व से भारत की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक एकता, अखंडता के अभिनव अभियान का अध्याय खुला था । इनका सुकोमल शांत-मधुर व्यक्तित्व राष्ट्र की बलिवेदी पर अर्पित दिव्य सुगंधित सुमन था । इन्होंने भयभीत मानवता को सँवारने के लिए पीड़ाओं का विषपान शंकर की भाँति किया है तथा हताशप्राय, विषण्ण, विमूर्च्छित मानव के लिए अमृतकलश छोड़ दिया है । इन्हें जीवन में कभी सुखोपभोग नहीं प्राप्त हुआ, फिर भी इन्होंने जो अभिजात संस्कार एवं वैदिक साधना का सरसिज खिलाया, वह अपने शाश्वत एवं सारस्वत सौरभ से दिग्दिगंत को परिपूरित करता है ।

आधुनिक भारतीय समाज के निर्माता और आर्यजगत के मंत्रद्रष्टा महाप्राण महर्षि दयानंद सरस्वती का भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में अवदान समादरणीय और अनुकरणीय रहा है । इन्होनें ही अपनी सर्वतोमुखी अप्रतिम प्रभा तथा असाधारण साधना तप-त्याग से परतंत्रता के कारागार में वंदिनी भारतमाता को विमुक्त करने का सर्वप्रथम कलनिनाद किया था । अब हमारा कर्त्तव्य है कि हम दिव्यप्रेरणा के पाथेय बटोरकर, सहेजकर प्रवंचित, दलित, विसंगठित, शोषित, निर्वासित जनमानस को सामाजिक समरसता की नयी संजीवनी शक्ति प्रदान करें और उनके पदचिन्हों पर अप्रतिहत चलें, तभी राष्ट्रीय एकता, अखंडता, मानवता और दिव्य प्रभात को सुरक्षित रख सकेंगे । कविर्मनीषी चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक' ने सच ही लिखा है-

''पहले-पहले स्वामीजी ने 'स्वराज की बतलाई बात !
कहा, 'गुलामी' में दुख ही दुख! स्वतंत्रता का दिव्य-प्रभात-
अपने भारत में ले आओ, स्वतंत्रता में है सम्मान ।
पीछे पैर न रखना हरगिज, हँस कर करो त्याग- बलिदान ।''

संपर्क -
हिंदी अध्यापक, संत फ्रांसिस उच्च विद्यालय
पोड़ैयाहाट, जिला - गोड्डा (झारखण्ड)

मोबाइल : 9162208005

मानव जीवन की महत्ता

-कामता प्रसाद मिश्र एम० ए० (हिन्दी, दर्शन, अर्थ०)

मानव सृष्टि का श्रेष्ठतम तथा सृष्टि का शिरोमणि एवं अदभुत प्राणी है । जो सृष्टि के सम्पूर्ण प्राणियों में बुद्धिमान तथा विवेकवान है । संसार के सभी प्राणियों पर शासन एवं अधिकार जमानें वाला है । यही नहीं यह भौतिक वस्तुओं की जहाँ अनुसंधान करता है वहीं उनको परिमार्जित एवं नया रूप देकर मानव उपयोगी बनाता है । जो मानव जीवन को सुखमय तथा आनन्दमय बनाते हैं । ईश्वर प्रदत्त अनेक औषधियों को मानव ने जहाँ स्वयं के लिए उपयोगी बनाया है वहीं अन्य प्राणियों के कल्याणार्थ भी निर्मित किया है । जिससे मानव तथा अन्य प्राणी वर्ग भी स्वस्थ तथा निरोग रह सकें ।

मानव परमात्मा की सर्वोत्तम देन है । सभी प्राणियों को केवल भोग योनि में ईश्वर ने भेजा है उन्हें केवल भोग करने का अधिकार प्राप्त है । परन्तु मनुष्य को भोग तथा कर्म करने का अधिकार है । वह सत्कर्म कर अपने तथा अन्य प्राणियों के जीवन को सुखमय बनाने के लिए है । वेद में मानव के लिए संदेश है- **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीवेषेशतम् समाः। यजु० ।।** सत्कर्मो को करते हुए सौ वर्ष जीने की कामना करो । प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि सम्पूर्ण जीवन कर्म करता रहे । आलसी, अकर्मण्य जीवन न जिए तथा निठल्ला और निकम्मा जीवन न बिताए । मानव का शरीर अन्य प्राणियों से भिन्न परमात्मा ने बनाया है । मानव शरीर की संरचना भी अन्य प्राणियों से अद्‌भुत तथा अनोखी है । शरीर से ही सुखों को भोगा जाता है, यदि शरीर स्वस्थ नहीं है तो सभी भोग-पदार्थ, धन-दौलत व्यर्थ है । इसीलिए दुनिया की सबसे बड़ी सम्पत्ति स्वस्थ शरीर है । शरीर रोगी होने पर सभी श्रेष्ठ वस्तुयें भी आकर्षणहीन तथा निरर्थक लगती है । संसार की यात्रा शरीर से ही करनी है, इस शरीर को धर्म का साधन और दैवी नाव भी कहा गया है यह दुर्लभ मानव योनि अनेक जन्मों के पुण्यों के बाद बड़े सौभाग्य से प्राप्त होती है । सृष्टि मानव के बिना अपूर्ण और महत्वहीन है । मनुष्य ही सृष्टि का सौंदर्य है इसी से ही संसार की उपयोगिता है ।

सुन्दर संसार को परमात्मा ने मानव के लिए कर्मक्षेत्र बनाया है, मानव जीवन से ही जगत है । मनुष्य शरीर पाना सबसे बड़ी उपलब्धि है । जीवन की कीमत उनसे पूछो जो रोगी है, अपंग है, विकलांग हैं । मानव के एक-एक अंग की कीमत अमूल्य है । मनुष्य योग के अभ्यास तथा ज्ञान, कर्म और उपासना के साधना से मोक्ष प्राप्त कर सकता है यह अन्य प्राणी नहीं कर सकते । मनुष्य की संरचना तथा अन्य पशु-पक्षी की संरचना भी प्रभु ने अलग तरह की किया है । संसार में किसी भी पशु-पक्षी का शिर मनुष्य के समान ऊपर की ओर नहीं हैं । सभी का शिर नीचे की ओर होता है । इसका कारण

शायद यह है कि पाप कर्म करने वाले का शिर नीचे तथा पुण्य कर्म करने वाले का शिर ऊपर ऊँचा होता है । मनुष्य शरीर में श्वास-प्रकिया सृष्टि का अद्भुत चमत्कार है ।

मानव शरीर सम्पूर्ण प्राणियों की शरीरों से विलक्षण तथा अद्भुत रचना प्रभु ने बनाया है । मशीनरी ऐसी कि लाखों नस-नाड़ियों से संचालित होती है । ईश्वर ने इसे श्वासों के सरगम से जोड़ दिया है । श्वास बन्द हो जाय तो शरीर का सारा खेल समाप्त हो जाता है । आज तक विश्व के कोई विशेषज्ञ डाक्टर पूरी तरह से इस शरीर विज्ञान को नहीं समझ सके हैं । महाकवि व्यास जी ने महाभारत में कहा है- नही मानुषात श्रेष्ठतरं हि किंचित् ।

''जगत में मनुष्य शरीर तथा जीवन से श्रेष्ठ कुछ भी नही है ।''

मनुष्य देह संसार में दुर्लभ तथा श्रेष्ठ सभी अन्य योनियों से है । यह अमूल्य मानव-जीवन प्रभु द्वारा दिया गया आत्मा का स्वर्णिम वरदान है । शरीर आत्मा का मन्दिर है इसमें ईश्वर का निवास है वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक प्रभु इसकी सदैव देख-रेख में लगा रहता है । लोग ईंट-पत्थर से मन्दिर बनाते है उसे साफ-सुथरा व सुगन्धित रखते हैं परन्तु हम हैं कि प्रभु प्रदत्त जागृत चेतन शरीर-मन्दिर को अनेक बुराइयों- काम, कोध्र, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा से तथा दोषों से भरकर इसकी पवित्रता को नष्ट कर देते हैं । इसकी पवित्रता तथा स्वच्छता यदि बनी रहे तो यह एक श्रेष्ठ पहचान से जानी जाती है। किसी कवि ने कहा है -

तूनें मुझको जग में भेजा, देकर निर्मल काया ।
आकर के संसार में मैंने इसको दाग लगाया ।।

उस परमात्मा की प्रशंसा तथा धन्यवाद करो और स्मरण करो आत्मा के संयोग से ही शरीर की पवित्रता तथा मूल्य है । यह जीवन यदि व्यर्थ मे गवाँ दिया तो आगे क्या पता यह जीवन मिले या न मिले । जब से सृष्टि का सृजन हुआ है जीव आवागमन के चक्र में चक्कर लगा रहा है । हम लोग न जानें कितनी योनियो से होकर यात्रायें की है । परन्तु मानव जन्म का अवसर कभी-कभी प्राप्त होता है। संत कवि तुलसीदास ने बड़े मार्मिक ढंग से जीवन की महत्ता का वर्णन किया है -

बड़े भाग मानुष तन पावा । सुर दुर्लभ सद्ग्रंथहि गावा । -मानस०

जन्म-जन्मान्तर के पश्चात् उत्तम कर्मो से पुण्यशाली लोंगो को मानव जीवन प्राप्त होता है, सभी जीव को यह जीवन दुर्लभ है । संसार में चौरासी लाख योनियों का जाल बिछा हुआ है । अनन्त जीव भोग चक्र में चक्कर लगा रहे हैं । जल, थल तथा न‌भ में असंख्य जीवन भोग चक्र में घूम रहे हैं । इनमें अनेक जन्म लेते हैं मरते रहते हैं । मच्छर, मक्खी, कीड़े-मकोड़े जैसे जीवों का जीवन अति-अल्प होता

है । समस्त योनियों में मानव जीवन ही श्रेष्ठतम् है । वेद में मानव जीवन की दिव्यता तथा श्रेष्ठता का सन्देश मिलता है -

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानामं पूरयोध्या । अथर्व ०

मानव शरीर को वेद ने अयोध्या नगरी से सम्बोधित किया है अर्थात इसको कोई अन्य शरीरधारी पराजित नहीं कर सकता । इसमें दिव्य देवों का निवास होता है । इसमें आठ चक्र तथा नौ द्वार हैं । यह शरीर परमात्मा का बनाया मन्दिर है । मानव शरीर अद्‌भुत शक्तियों का भण्डार है, इसको विशेष बुद्धि, इन्द्रियाँ और विवेक प्राप्त है और सोचने, समझने और निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त है । मानव मस्तिष्क के विलक्षण और आश्चर्यजनक क्रिया कलापों के समक्ष संसार की सभी वस्तुयें निकृष्ट प्रतीत होती हैं । इस सृष्टि में मानव बुद्धि तथा हाथों की कुशलता एवं कला ने आश्चर्यजनक कार्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है । मानव के अनेक अद्‌भुत, विलक्षण व चमत्कारी आविष्कारों ने संसार को अनोखा चमत्कारी रूप दे दिया है । जब हम देखते हैं कि कितने जीव-जन्तु गन्दी नालियों में पड़े हैं अनेक जीव तरह-तरह के दुःखों और क्लेश-पीड़ा में अपना कर्मफल भोग रहे हैं और अंधकार पूर्ण लोकों में तथा अनेक योनियों में जीवन जी रहे हैं । समुद्र की तरफ देखिए वह तो सृष्टि का सबसे कष्टसाध्य ईश्वर का कारागार है जिसमें अनन्त जीव दिन-रात अथाह पानी में ही रहते खाते-सोते अपना जीवन गुजार रहे हैं । उनसे तुलना करो कि मनुष्य जीवन की क्या महत्ता है, क्या मूल्य है ?

संसार के सभी मनुष्यों को प्रभु का धन्यवाद इसलिए करना चाहिए कि उसने हमें समस्त योनियों में श्रेष्ठ मानव जीवन प्रदान किया है, नहीं तो हम न जाने किन योनियों में कहाँ-कहाँ भटक रहे होते । परमात्मा का हम पर यह महती कृपा तथा उपकार है, उसने हमें दुर्लभ मानव जीवन से अलंकृत किया। हमारा भी इसी के साथ यह कर्तव्य है कि हम मानवीय मूल्यों के अनुसार आचरण करें तथा सत्कर्मो द्वारा जीवन को सफल बनायें । हमें अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूर्ण निष्ठा से करना चाहिए । तभी मानव जीवन की सार्थकता है ।

अनेक योनियों एवं जन्मों के पश्चात् जीव मानव तन पाने का अधिकारी बना । यदि मानव शरीर पाने के बाद भी आत्मा पाप कर्म करती है तो उसे पाप के फल को भोगने के लिए भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेना पड़ेगा । दुःख सागर में गोते खाने पड़ेंगे । संसार में इसीलिए जितना महत्व तथा मूल्य मानव-जीवन का है उतना किसी अन्य प्राणी का नहीं है । क्योंकि मानव जीवन पाने के बाद अपने पाप कर्मो के कारण फिर अन्य तुच्छ योनियों में जाना पड़े तो यह मानव जीवन का कितना बड़ा अपमान और पतन का मार्ग है । बहुत से अज्ञानी व्यक्ति अपने इस मानव जीवन जो अमूल्य है उसे व्यर्थ में गवाँ

देते हैं । बचपन उनका कब आया, जवानी कब आई और कब चली गई । फिर वृद्धावस्था का आगमन हुआ और दुर्लभ मानव जीवन बातों-बातों में व्यर्थ निकल गया । संसार में लाखों-करोड़ों लोग जन्म लेते हैं और जीवन भोगते-भोगते चले जाते हैं, इन्हीं में कोई-कोई व्यक्ति सार्थक, उपयोगी और सुन्दर जीवन जी कर संसार में अपनी कीर्ति स्थापित कर मनुष्यों के कल्याण के मार्ग प्रशस्त कर देते हैं । उनका नाम शताब्दियों तक याद किया जाता है । महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने शताब्दियों की कुरीतियों अंधविश्वासों तथा आडम्बर, पाखण्डों को समाप्त करने का संकल्प लिया । उन्होंने मानव के कल्याणार्थ मानव को सत्य तथा सार्थक जीवन जीने का संदेश दिया । उन्होंने बहुत सी बुराइयों, अंधविश्वासों तथा पाखण्डों को जड़ से नष्ट किया और मनुष्य को मनुष्य बनने का उपदेश दिया । उनका स्पष्ट मन्तव्य था कि मनुष्य को तर्क और विज्ञान की कसौटी पर जो सत्य हों उसे ही ग्रहण करो । इसी सदंर्भ में ऋषि ने कालजयी कृति 'सत्यार्थप्रकाश' की रचना किया । जो सभी मानव तथा मत-मतान्तरों के लोगों को भी स्वाध्याय करने योग्य है । जिसके अध्ययन से आखें खुल जाती है, अज्ञानता का तिमिर नष्ट हो जाता है । ईश्वर एवं धर्म के सच्चे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो जाता है । अधर्म तथा सभी मत-मतान्तरों की सच्चाइयों तथा बुराइयों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है । मानव को भावी जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है ।

मानव जीवन की उपयोगिता उस समय होती है जब मानव अपने जीवन को लोकहित एवं परमार्थ में लगा देता है । जीना तो सभी चाहते हैं कोई मरना नहीं चाहता । अपंग, दुखी तथा विकलांग व्यक्ति भी जीना चाहता है । दूसरे जीवों से तुलना करके देखने पर मानव जीवन का मूल्य पता लगता है । परमात्मा ने मानव योनि की जो विशेषताएँ, शक्तियाँ, साधन और वरदान दिया है उस प्रकार किसी अन्य को नहीं । मनुष्य योनि में ही जन्म-जन्म के पाप कर्मो को धोने का अवसर मिलता है । यह अवसर बीत जानें पर कुछ हाथ नहीं लगेगा । यह जीवन एक परीक्षा है और संसार परीक्षा-स्थल । यदि मानव तन पाकर भी पशुओं-पक्षियों की तरह जीवन व्यतीत किया तो यह जीवन जीना नहीं है । इसे ही हम नरक व अज्ञानी का जीवन कहते हैं । जीने की कला स्वामी दयानन्द जी ने अपने ग्रंथो में लिखा है । सभी को उसे अपने आचरण में लाना चाहिए तथा मानव जीवन को सार्थक बनाना चाहिए । मानव जीवन तभी सफल और आनन्दित होगा जब हम 'मनुर्भव' के सिद्धान्तों और विचारो को जीवन में उतारेंगे ।

मं०ज० 2553/2 निराला नगर, शिवपुरी
सुल्तानपुर (उ० प०)

।।ओ३म्।।

पं० उम्मेद सिंह विशारद
मो० 9411512019
9557641800

संवत् १९९४ की महाशिवरात्री (मूलशंकर) दयानन्द की आत्म बोध करा गई। और (मूलशंकर) महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने संसार की सोई आत्मा को जगा गई।

जन साधारण का विचार है कि ईश्वर स्वयं अवतार धारण कर पृथ्वी पर जन्म लेता हैं। यह महा अज्ञान है, क्योंकि अजन्मा, अव्यय, निराकार सृष्टिकर्त्ता ईश्वर साधारण मनुष्य के रूप में साकार कैसे हो सकता है। यह अलग बात है कि मोक्ष से लौटी मुक्त आत्माएं अधर्म का नाश करने के लिए किसी माता-पिता के गोद में मनुष्य के रूप में जन्म लेती हैं।

संसार में जीवों का जन्म दो प्रकार से होता है, एक कर्म से बद्ध जीवों का दूसरा माया मोह के बन्धनो से युक्त जीवों को होता है। उदाहरण महाभारत में अर्जुन कर्म से बद्ध जीव है और श्री कृष्ण कर्म से मुक्त जीव है। ईश्वर की प्रेरणा से कर्म वद्ध जीवों का जन्म कर्म फल भोगने के लिए होता है और कर्म मुक्त जीवों का जन्म स्वेच्छा से दूसरों के कल्याण के लिये होता है। ऐसे ही महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म संसार के कल्याण के लिये हुआ था।

जन्म और बोध की महान घटना

ऋषि दयानन्द का जन्म (संवत १८८१) विक्रमी में भारत के सौराष्ट्र (काठियावाड़) प्रान्त में मौरवी राज्य के टंकारा ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम कर्षन जी लाल जी त्रिवेदी था। वे औदीच्य ब्राह्मम थे। उनका बचपन का नाम मूलशंकर था, संन्यास लेने के बाद दयानन्द सरस्वती हुआ।

१८ वर्ष की आयु में ही मूलशंकर ने यजुर्वेद कण्ठस्थ कर लिया था। इसी अवस्था में एक दिन महा शिवरात्रि के पर्व पर पिता जी ने व्रत रखने और रातभर जागने का आदेश दिया और मूलशंकर ने शिव मन्दिर में मूर्ति के सामने बैठकर उनके दर्शन की प्रबल इच्छा से सारी रात काट दी। शिव जी के दर्शन तो क्या होने थे, उसने देखा कि ज़ब सब भक्त सो गये, तब मन्दिर में सन्नाटा देखकर चूहे बिलों से निकल आये और मूर्ति पर चढ़े (नैवेद्य) प्रसाद को खाने लगे और उछल कूद करने लगे। यह देखकर मूलशंकर के ह्रदय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि ये कैसा शिव है जो चूहों से भी अपनी रक्षा

नहीं कर सकते है । इस महान शंका का समाधान कोई न कर सका । भला यह परमेश्वर कैसे हो सकते है और हमारी रक्षा कैसे कर सकते है । बस यही विचार संसार की दशा बदलने में सहायक सिद्ध हुई और उन्होंने हृदय में निश्चय कर लिया कि मैं सच्चे शिव को प्राप्त करूंगा और घर छोड़ कर शिव को ढूँढ़ने निकल पड़े । फिर आजीवन घर वापस नहीं आये

उन्नीसवीं शताब्दी में

ऋषि दयानन्द जी गुरू बिरजानन्द से शिक्षा पाकर भारत के रणांगन में उतरे तब उन्हें चारो तरफ अन्धकार व ललकार ही सुनाई व दिखाई दिया । उन्होंने उस ललकार को स्वीकार किया । साधारण लोग इस ललकार को सुनकर इस चैलेंज और आह्वान को देखकर जीवन संग्राम से भाग खड़े होते हैं । परन्तु ऋषि दयानन्द समय का दास बनकर नहीं आये थे, किन्तु समय को अपना दास बनाने आये थे । महापुरुष जमाने की गर्दन पकड़ कर उसे अपने अनुसार चलाते है ।

ललकार ही ललकार

भारत की परतन्त्रता, धार्मिक अन्धविश्वास, सामाजिक कुरीतियां, जाति प्रथा, नारियों का शोषण, सामन्तवादी प्रथा, व अनेक अन्ध प्रथाओं की चुनौतियां उनके सामने थी, उन्होंने भारतीयों के अन्ध विश्वास व पीड़ा को समझा, इसके रोग को अनुभव किया, इसके लिये जीवित थे । हिन्दुओं का रूढ़िवाद का विशेष चैलेंज था । जहां देखो वहां कुप्रथाओं की दासता, रूढ़ि की गुलामी, जो चला आ रहा है, उससे इधर-उधर नहीं जा सकते । महर्षि दयानन्द जी ने रूढ़ि की थोथी दीवारों को एक झटके से गिरा दिया । अगर पौराणिक धर्म उनको एक चैलेंज के रूप में दिखाई दिया तो ईसाइयत और इस्लाम भी उन्हे चैलेंज के रूप में दिखाई दिया । तो ईसाई और मुस्लिम भी उन्हें चैलेंज के रूप में दिखाई दिया। बाहर वालों से और अन्दर वालों से जूझ पड़े । दुनिया भर की गन्द जला डालने की हिम्मत उनमें थी ।

ऐसे महा पुरुष दुनिया को बदलने के लिये पैदा होते है ।

ऐसे महापुरूष संसार को एक नया दृष्टिकोण दे जाते हैं । किन्तु पुराना जड़वाद समाज उन्हें बरदाश्त नहीं कर सकता है लेकिन ये दुनिया भी ऐसी है कि उन्हें देर तक बरदाश्त नहीं कर सकती। किन्तु वह महापुरूष उसके लिये तैयार रहते हैं सुकरात अपने जमाने को बदलने आये थे, उन्हें जहर का प्याला पीना पड़ा । ईसामसीह नई दुनिया का सपना लेकर आये थे, उन्हे सूली पर लटकना पड़ा। महर्षि दयानन्द अपने देश और जाति को नये ढांचे में बदलने आये थे, उन्हें दूध में घुले जहर को पीकर प्राण गँवाने पड़े । महात्मा गांधी नई सोच दे रहे थे, उन्हें गोली का शिकार होना पड़ा । ये दुनिया अपने

को बदल देने वाले को बरदाश्त नहीं कर सकती है । किन्तु वे ऐसी शक्ति अपने पीछे छोड़ जाते हैं जो नवीन संसार की रचना कर देती है ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा संसार को बदलने की देन

महर्षि दयानन्द जी ने सर्वप्रथम वेदों के रूढ़ि अर्थो पर प्रहार किया, और शब्दों का शुद्ध अर्थ करके ईश्वर परक अर्थ किये, क्योंकि उस वक्त विद्वान वेदों के इतिहास परक अर्थ करते थे, महर्षि ने वेदों के अर्थ विज्ञान व सृष्टि क्रमानुसार किये । उन्होंने चले आ रहे थे जो वेदों के अर्थ के अनर्थ में कि वेदो में पशु बलि है, नारी और शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, सबका विरोध किया और वेदों की ओर लौटने का सन्देश दिया ।

महर्षि दयानन्द और अन्य समाज सुधारकों में भेद यह है कि दूसरों ने हिन्दू धर्म खत्म करने का प्रयास किया, किन्तु महर्षि दयानन्द जी ने हिन्दू रहते हुए उन्हें, नवीनता के रंग में रंग दिया । उन्होंने हिन्दू धर्म की काया पलटने का कार्य किया यही कारण है, उन्नीसवीं शताब्दी समकालीन सुधारकों में जितनी सफलता उनको मिली उतनी अन्य किसी को नहीं मिली । ऋषि दयानन्द ने समाज की जो रूप रेखा बनाई थी, उसी को लेकर बीसवीं सदी में सामाजिक तथा राजनैतिक नेताओं ने कार्य किया । महात्मा गांधी के बीसवीं सदी के आन्दोलन को समझने के लिये ऋषि दयानन्द का उन्नीसवीं शताब्दी के आन्दोलन को समझना आवश्यक हैं ।

ऋषि दयानन्द जी ने निम्न महत्वपूर्ण कार्य किये

रूढ़िवाद पर प्रहार: ऋषि दयानन्द जी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सदियों से चली आ रही रूढ़ि परम्परा पर कठोर प्रहार किया । उन्होंने कहा जो चला आ रहा है, उसकी रक्षा करनी है और रूढ़ियों को तोड़ना हमारा धर्म है, समाज को आगे बढ़ाना है । पीछे नहीं लौटाना है उन्होंने तमाम रूढ़ि परम्पराओं को तोड़ने का नारा लगाया । सारे भारत में हलचल मच गई और सुधारवाद का नारा चल पड़ा । एक ही जगह भारत सदियों की नींद छोड़ आगे कदम बढ़ाने लगा ।

धार्मिक क्षेत्र में रूढ़िवाद पर प्रहार: भारत का धर्म वेदों से बंधा हुआ था, क्योंकि वेदों के रूढ़ि अर्थ उस समय के विद्वानों ने किये थे, उस समय के विद्वान सायणाचार्य, महीधर, मैक्समूलर, जेकोबी, शंकराचार्य आदि ने कहा कि नारियों और शूद्रों को वेद नहीं पढने चाहिए, वर्ण व्यवस्था जन्म से हो कर्म से नहीं, दलित वर्ग को सदा नीचे रखकर शोषण करना चाहिए, काल्पनिक देवताओं की पूजा करनी चाहिए, जड़ पदार्थ मूर्ति पूजा करनी चाहिए, क्योंकि ये सब वेदों में लिखा है । अन्धविश्वासों को मिटाने के लिये सबसे पहला प्रहार वेदों के रूढ़ि इतिहास परक अर्थो पर किया । निरूक्त शास्त्र के अनुसार,

ईश्वर परक अर्थ किये । समाज की विचारधारा ही बदल डाली । उन्होने कहा श्री राम, कृष्ण, शिव, हनुमान आदि उच्च आदर्श महापुरुष थे, उनकी चित्र या मूर्ति की जगह उनके चरित्रों को मानना चाहिए। उन्होंने प्राचीनता और नवीनता का आधार सत्य वेदों का मार्ग खड़ा कर दिया ।

सामाजिक क्षेत्र में रूढ़िवाद पर प्रहार :- महर्षि का दृष्टिकोण सर्वदा मौलिक था और वह भूतकाल और भविष्यकाल को मिलाकर चलना चाहते थे । स्त्री शिक्षा चलाना, बाल विवाह रोकना, विधवा विवाह निषेध, दहेज प्रथा आदि रूढ़ियों को रोका, उन्होंने समाज में व्याप्त तमाम रूढियों को तिलांजलि दी । उन्नीसवीं सदी में जितनी सफलता उनको मिली और किसी को नहीं मिली । महर्षि दयानन्द जी का उन्नीसवीं सदी का सुधारवादी आन्दोलन और महात्मा गांधी का बीसवीं शताब्दी का आन्दोलन सफल रहा ।

राजनैतिक क्षेत्र में प्रहार :- उनका आधार राजनैतिक क्षेत्र में चली आ रही रूढ़िवाद का उन्मूलन करना था । उनका मानना था कि जब तक राजनैतिक क्षेत्र में विद्वानों और धार्मिक लोगों का नेतृत्व होगा तभी भारत में खुशहाली आ सकेगी । उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा कि आर्यो का आलस्य आपसी विरोध आदि के कारण फैला है । कोई कितना करे स्वराज्य सर्वोत्तम होता है ।

समाजवादी विचार धारा :- आज हम जो समाजवाद का नारा लगाते हैं वह पश्चिम की नकल है । महर्षि दयानन्द जी ने पूर्व और पश्चिम का समन्वय किया और अपनी मूल संस्कृति को न छोड़ते हुए नवीन विचारधारा अपनाई थी । उन्होंने समाजवाद व उसकी वर्ण व्यवस्था, तथा गुरूकुल शिक्षा प्रणाली को अपनाया था ।

शिवरात्री हमें भी जगा दो इक बार । आती तुम यद्यपि बार-बार -।
पर रहे हम अभागे, जो हम नहीं बदल पाये अपने जीवन को-।
कर चुका तुम्हारा स्वागत जीवन में, कितनी बार, हमें भी जगा दो इस बार-।

प० उम्मेदसिंह विशारद
वैदिक प्रचारक
गढ़ निवास मोहकमपुर
देहरादून उत्तराखण्ड ।

मो०-9411512019
9557641800

आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

नवसम्वत्सर एवं आर्य समाज स्थापना दिवस

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् २०७५ दिन रविवार तदनुसार १८ मार्च २०१८ को आर्य समाज मन्दिर में प्रातः १० बजे से आर्य समाज स्थापना दिवस मनाया गया । इस अवसर पर यज्ञ के उपरान्त श्रीमती माधुरी शाह, श्रीमती कुसुम कपूर द्वारा भजन एवं श्री श्रीराम आर्य, पं० देवनारायण तिवारी, श्री मनीराम जी आर्य, श्री योगेशराज उपाध्याय एवं श्री सत्य प्रकाश जायसवाल जी द्वारा आर्य समाज स्थापना के पूर्व की तत्कालीन परिस्थिति, महर्षि दयानन्द जी द्वारा आर्य समाज स्थापना का उद्देश्य तथा आर्य समाज द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में किये गये कार्य तथा वर्त्तमान में आर्य समाज की आवश्यकता एवं इसकी उपयोगिता पर व्याख्यान व विचार प्रस्तुत किये गये ।

रामनवमी पर्व

चैत्र शुक्ल नवमी सम्वत् २०७५ तदनुसार २५ मार्च २०१८ दिन रविवार को आर्य समाज कलकत्ता के सभागार में सत्संग के अवसर पर राम नवमी पर्व मनाया गया । यज्ञ के उपरान्त भजन व प्रवचन तथा पं० देवनारायण तिवारी तथा श्री मनीराम जी आर्य द्वारा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जी के जीवन तथा उनके आदर्शों की समाज पर पड़ी अमिट छाप तथा वर्तमान में उनके जीवन से कैसे सामाजिक परिवर्तन लाया जाय इस पर अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये ।

शोक समाचार

आर्य समाज नरवा, पीताम्बरपुर के पूर्व मन्त्री श्री विनोद मिश्र के पिता श्री भीमसेन मिश्र जी का निधन दिनांक २१.०३.२०१८ दिन बुधवार को लगभग ८२ वर्ष की आयु में हो गया है । श्री भीमसेन मिश्र राष्ट्रीय इन्टर कालेज तेन्दुआँकला के संस्कृत के लेक्चरर एवं चण्डेश्वर डिग्री कालेज, आजमगढ़ के संस्कृत विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष डा० राधेश्याम मिश्र के अग्रज थे ।

आर्य समाज कलकत्ता के ०१.०४.२०१८ के रविवारीय साप्ताहिक सत्संग पर एकत्रित समस्त आर्यजनों ने दिवंगत आत्मा के निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करते हुए दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना की ।

मार्च २०१८ आर्य समाज कलकत्ता द्वारा बंगाल में वेद प्रचार की श्रृंखला में

पं० वेदप्रकाश शास्त्री की प्रचार यात्रा

१. **२/३/२०१८ से ४/३/२०१८** - आर्य समाज मालिग्राम के श्री दिर्ल[illegible] के [illegible] के उपलक्ष्य में समस्त आर्य परिवार के सदस्यों तथा बहिरागत अति[illegible]ग

२. **१२/३/२०१८** आर्य समाज मालिग्राम के श्री निखिल राय की कन्या का **विवाह संस्कार**

३. **१३/३/२०१८** आर्य समाज मालिग्राम के श्री लक्ष्मण राय के पुत्र श्री प्रणव राय का विवाह संस्कार

४. **२३/३/२०१८ से २५/३/२०१८** आर्य समाज मालिग्राम तथा महर्षि दयानन्द गुरुकुल के वार्षिकोत्सव में वेद प्रचार

५. **२९/३/२०१८ से ३१/३/२०१८** आर्य समाज कुलबाड़ी, उत्तर कलमदान, खेजूरी, पूर्व मेदिनीपुर के वार्षिकोत्सव में वेदप्रचार

निवेदक

पं० वेद प्रकाश शास्त्री

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए **श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल** द्वारा प्रकाशित तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित । मो. : ९८३०३७०४६३